अध्याय 19

फीनोमिनोलॉजिकल सिद्धान्त
(Phenomenological Theory)

इस पुस्तक में हमने कई समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का विवेचन किया है। इन सिद्धान्तों की तुलना में फीनोमिनोलॉजी एक ऐसा सिद्धान्त है जो तुलनात्मक दृष्टि से हाल में विकसित हुआ है। इसके विकास की दो मुख्य धाराएं हैं। एक धारा यूरोप की है जिसके प्रणेता *हसरेल और शूट्ज* (Hussrel and Schutz) है। इधर अमेरिका में फीनोमिलॉजिकल की जो दूसरी धारा विकसित हुयी है, उसके प्रणेता *जार्ज सान्त्याना* (George Santayana) हैं। कई बार फीनोमिलॉजी को कई विचारक सिद्धान्त का दर्जा नहीं देते और कहते हैं कि यह पद *घटना-क्रिया समाजशास्त्र* (Phenomenological Sociology) से अधिक कुछ नहीं है। वास्तव, में फीनोमिलॉजी का विकास दर्शनशास्त्र से हुआ है। इसकी सम्पूर्ण भूमिका दर्शनशास्त्रीय ही है। यूरोप की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि उर्वरक है। यहाँ मैक्स वेबर, मार्क्स, दुर्खाइम आदि विचारकों की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि उपलब्ध है और इसी कारण फीनोमिलॉजी की जो धारा यूरोप में विकसित हुयी जिसे हसरेल और शूट्ज ने पनपाया, ताकतवर है। दूसरी और अमेरिका में सान्त्याना से पोषित फीनोमिनोलॉजी अपनी जड़ें नहीं पकड़ पाया। अमेरिका के उपयोगितावाद ने इसे पनपने नहीं दिया। अब भी यह सिद्धान्त यहां अछूता ही है। एक और दुर्घटना हुयी । 1939 में शुट्ज ने इस ज्ञान शाखा को अमेरिका के अन्तःक्रियावाद के साथ जोड़ दिया और इस तरह फीनोमिनोलॉजी का विकास व्यवधान के फेर में आ गया।

फीनोमिनोलॉजी का अर्थ

अंग्रेजी भाषा का शब्द *फीनोमिनन* (Phenomenon) यूनानी भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ *प्रकट दर्शन* से है। समाज विज्ञान विश्व-कोष में इसकी परिभाषा में लिखा है कि *यह दर्शनशास्त्र की एक विधि जिसकी शुरूआत व्यक्ति से होती है और व्यक्ति को स्वयं के अनुभव से जो कुछ प्राप्त होता है, उसे इसमें सम्मिलित किया जाता है। स्वयं के अनुभव से बाहर जो भी पूर्व-मान्यताएं पूर्वाग्रह और दार्शनिक बोध होते हैं वे सब इसके क्षेत्र से बाहर हैं।* घटनायें अपने वास्तविक स्वरूप में जैसी भी है, कर्ता उन्हें समझता है। इस दृष्टि से फीनोमिनोलॉजी सार रूप में *व्यक्तिनिष्ठवाद* (Subjectivism) है।

नाटन्सन (Natanson) ने फीनोमिनोलॉजी को एक प्रकार का उत्प्रेरक सम्बोधन माना है। इसमें समाज की सम्पूर्ण घटनाओं के बारे में व्यक्ति की जागरूकता या चेतना होती है।

दार्शनिकों ने फीनोमिनोलॉजी की व्याख्या कई संदर्शों में की है। मुख्य बात यह है कि फीनोमिनोलॉजी के विचारक एक बुनियादी समस्या से जुड़े हुए हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य समाज या दुनिया की *वास्तविकता* (Reality) को जानना है। आखिर, वास्तविकता क्या है? दुनिया में कौनसी वस्तुएँ अस्तित्व रखती है? और यदि दुनिया में जो कुछ वास्तविकता है, जिसका अस्तित्व है, उसे जानने की पद्धति क्या है? क्या दर्शनशास्त्र या कोई समाज विज्ञान दुनिया की वास्तविकता को समझ भी सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर में फीनोमिनोलॉजी का कहना है कि समाज की वास्तविकता को जानने का तरीका केवल एक है और वह है *व्यक्ति का अनुभव*। दुनिया में जो कुछ भी वास्तविक है उसे व्यक्ति अपनी इन्द्रियों और मानसिक प्रक्रियाओं के द्वारा अनुभव करता है। *दूसरे लोगों का अस्तित्व, उनके मूल्य और मानक और भौतिक वस्तुओं के अस्तित्व को लोगों की चेतना और जागृति द्वारा ही जाना जा सकता है। कोई भी मनुष्य प्रत्यक्ष या सीधा समाज के यथार्थ को नहीं जान सकता। इस यथार्थ को समझने में मनुष्य की चेतना और उसके मस्तिष्क की क्रियाशीलता महत्वपूर्ण है।* हमारा जो कुछ ज्ञान समाज के बारे में है वह सब चेतना या मस्तिष्क के सम्पर्क के माध्यम से हैं।

फीनोमिनोलॉजी हमसे एक आग्रह करता है कि हम उन सब बातों को स्वीकार न करें जिन्हें हमने विवाद से पढ़े और हर तरह से स्वीकार कर लिया है। होना यह चाहिये कि हम दुनिया की वस्तुओं को किस तरह से देख रहे हैं, देखना बन्द करें। हमें एक अजनबी या अनजान की तरह हमारे इर्द-गिर्द की वस्तुओं को देखना चाहिये और उन्हें हर तरह के प्रश्नों के घेरे में लाना चाहिये। उदाहरण के लिये कोई आदमी आपके पास आता है और यदि आप हमारी इस पुस्तक को पढ़ रहे हैं तो पूछेगा कि यह पुस्तक क्या है? आपको यह प्रश्न बेतुका लगेगा । प्रश्न पूछने वाले को जानना चाहिये कि लोग पुस्तकें ज्ञान प्राप्त करने के लिये पढ़ते हैं, जानकारी लेने के लिये पढ़ते हैं। लेकिन यदि आपको प्रश्न पूछने वाला व्यक्ति इस दुनिया के लिये अजनबी है और अंतरिक्ष से उंतर कर सीधा आपके पास आया

है तो वास्तव में आपकी उसके प्रति पूरी सहानुभूति होगी। यह इसलिये कि इस दुनिया में पुस्तक के बारे में लोगों के क्या विचार हैं, आखिर पुस्तक क्या है, इसका उसे कोई ज्ञान नहीं है। इसी कारण वह ऐसे प्रश्न आपके सामने रखता है। फीनोमिनोलॉजी का सिद्धान्तवेत्ता अंतरिक्ष से आये हुये इस अजनबी की तरह होना चाहिये। हमारे आस-पास जो कुछ हो रहा है उसे हमें ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करना चाहिये। समाज की घटनाओं के बारे में बराबर प्रश्न पूछने चाहिये : आखिर ये वस्तुएँ क्या हैं? ऐसा समाज में क्यों होता है? वस्तुओं का वास्तविक स्वरूप क्या है? आदि।

समाज कुछ इस तरह चलता है कि हमारे दिन-प्रतिदिन काम में आने वाली वस्तुएं, खान-पान, कपड़ा-मकान, तीज-त्यौहार, समाज द्वारा बनायी गयी धरोहर के रूप में हमारे जीवन में है। जो कुछ हम करते हैं, मानते हैं वह सीखी हुई संस्कृति है क्योंकि यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी से हमारे पास आयी है। हम कमीज पहनते हैं, जूते पहनते हैं और इसी तरह शाकाहारी भोजन करते हैं, राखी-दीवाली मनाते हैं, संस्कृति के ये सब तत्व हमारी विरासत हैं। फीनोमिनोलॉजी का आग्रह है कि जो कुछ हमारी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विरासत है, उसे ज्यों का त्यों स्वीकृत नहीं करना चाहिये। फीनोमिनोलॉजी तो इस सम्पूर्ण विरासत, इससे जुड़ी हुयी मान्यताओं को आलोचनात्मक दृष्टि से लेता है। इन्हें स्वीकारने की चुनौती देता है। जहां प्रकार्यवादी समाज के मानक और मूल्यों को स्वीकार करना आवश्यक समझते हैं, उनके अस्तित्व के प्रति प्रश्नचिन्ह नहीं खड़ा करते, वहां फीनोमिनोलॉजी का संदर्श इन सब मान्यताओं को चुनौती देता है। उदाहरण के लिये हम हमारे समाज में स्त्रियों की दशाओं को देखें तो हम ऐसा समझते हैं कि पिछली शताब्दियों में हमने बराबर स्त्रियों को गैर-बराबरी का दर्जा दिया है। चुल्हे से लेकर घर के बाहर तक हमने स्त्रियों की स्थिति को त्रासदीपूर्ण बना दिया है। स्त्रियों के प्रति हमारे विचार अतीत ने बनाये हैं। हमें ऐसा ही समझाया गया है, हमें कुछ ऐसा ही सिखाया गया है। फीनोमिनोलॉजी का सिद्धान्तवेत्ता स्त्रियों के प्रति इस तरह की पूर्वाग्रह ग्रसित धारणा को नहीं रखता। वह तो पूछता है : क्या स्त्रियों के लिये यह प्राकृतिक है कि बच्चों के प्रजनन के बाद वे उनका पालन-पोषण भी करें? यह तो समझ में आता है कि आदमी प्रजनन नहीं कर सकता। लेकिन यह कहां तक सही है कि प्रजनन करने के बाद भी बच्चे के पालन पोषण का उत्तरदायित्व भी उसी का है। बच्चों को जन्म देना तो प्राकृतिक व जैविकीय है, लेकिन उनका प्रजनन सामाजिक है। फिर इस प्रश्न का उत्तर क्या है, फीनोमिनोलॉजी पूछता है। आगे और ऐसे ही कई प्रश्न फीनोमिनोलॉजी के सिद्धान्तवेत्ता पूछ सकते हैं। आज नारी आन्दोलन जिन मुद्दों पर उठाया जा रहा है, वस्तुतः वे मुद्दे फीनोमिनोलॉजी के हैं। सच्चाई यह है कि फीनोमिनोलॉजी उन प्रश्नों को पूछता है जिन्हें सामाजिक व्यवस्था ने पूरी तरह स्वीकार कर लिया है, जो हमारी सांस्कृतिक-सामाजिक विरासत के अंग बन गये हैं, जो हमारी दिन प्रतिदिन की गतिविधियों को संचालित व नियंत्रित करते हैं।

फीनोमिनोलॉजी की खोज वस्तुओं के अस्तित्व को ढूंढने की है। इसका प्रश्न है- आखिर समाज में वास्तविक और सच्चाई क्या है? यदि हम हमारे देश में दलितों की सामाजिक-आर्थिक दशा को देखे तो हमारा दिल दहल जायेगा। इन वर्गों में कुछ लोग ऐसे हैं जो दिन में एक जून खाना खाकर जीवित हैं। सदियों से हमने इन वर्गों को समाज के हाशिये पर त्रासदी झेलने के लिये छोड़ दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमने पहली बार संवैधानिक रूप से दलितों की समस्याओं के निदान के लिये सृजनात्मक विकास कार्यक्रम तैयार किये। लेकिन *दलितों की वास्तविक स्थिति के बारे में जो प्रश्न पूछे गये कि आखिर दलितों को हाशिये पर क्यों रखा गया, उन्हें उचित मानवीय व्यवहार क्यों नही प्राप्त हुआ, आदि सारे प्रश्न वस्तुतः फीनोमिनोलॉजी के प्रश्न हैं।* फीनोमिनोलॉजीकल समाजशास्त्र परम्परा से पीड़ित दलितों के उद्धार की बात करता है। ऐसी आशा की जाती है कि यदि फीनोमिनोलॉजीकल समाजशास्त्र को विकास की सही दिशा दी जाये तो शायद समाज की वास्तविकता को समझने में हमारे संदर्श की धार अधिक तेज हो जायेगी। हमारी अर्न्तदृष्टि गहरी हो जायेगी।